हिन्दी : एक हृदय हो भारत मां का

डॉ. मंजीत

किसी भी भाषा का सीधा संबंध उस देश की अथवा क्षेत्र की अथवा की संस्कृति से होता है जहाँ वह भाषा प्रयोग में लाई जाती है और धीरे–धीरे वह भाषा 'मानक भाषा' का रूप लेकर अपनर व्यापकता स्थापित कर लेती है फलतः पूरे देश में अन्य भाषा–भाषी लोग भी उस भाषा का प्रयोग सार्वजनिक कामों में करने लगते हैं और इस तरह भाषा 'राष्ट्र भाषा' का रूप धारण कर लेती है।

जहाँ तक सवाल हिंदी भाषा का है तो कहना गलत ने होगा कि भले ही हमारे देश में अनेक भाषाएँ बोली जाती है व व्यवहार में लाई जाती हैं, किंतु हिंदी भाषा पूरे भारत देश में बोजी और समझी जाती है और अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक मानक एवं व्यापक है। हिंदी भाषा के इस मानक रूप एवं व्यापकता के पीछे भी बडी ही रोचक कहानी है। जब विदेशी भाषा ;अंग्रेजीद्ध का प्रभाव केवल शासल तक ही सीमिज न रहकर हमारी भारतीय संस्कृति को भी ग्रसने लगा जो हमारे राष्ट्रीय कर्णधारों ने राष्ट्रीयता को शक्ति प्रदान करने के लिए किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने की उतराधिकारिणी के रूप में हिंदी भाषा उभर कर सामने आई। इसी के साथ ही हिंदी को भारत का हृदय, भारत की राष्ट्रभाषा आदि बनाने के प्रयास तेज हो गए।

यद्यपि तीर्थयात्रियों व संतो द्वारा सदियों से भारत के प्रत्येक कोने में हिंदी का प्रयोग अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी होता रहा था। संत रैदासख कबीर आस, जायसी, दादूदयाल, गुरू नानक, नामदेव, संत ज्ञानेश्वर, नामानन्द, आलवार आदि संतो की वाणियों से भता कौन नहीं है। प्रकार सन्त–महात्माओं की वाणी ने समूचे भारत मे हिंदी को एक मजबूत कडी प्रदान की और यही कारण भा कि अहिन्दी भाषी क्षेत्र के लोग भी हिंदी के शाब्दों से अपरिचित नहीं थे।

हिन्दी भाषा की इसी विशोषता को देखते हुए हमारे देश के नेताओं ने हिंदी को संपूर्ण देश की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया ताकि समूचे देश को पुनः एकता के सूत्र में पिरोया जा सके और विदेशियों के वर्चस्व को खोखला किया जा सके। सह तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल भी थी क्योंकि अंग्रेज हिन्दू और मुसलमानों में फूट के बीज बोकर उसका भरसक लाभ उठाना चाहते थे । महात्मा गांधी

जी ने अपनी पुस्तक 'स्वराज' में इस तथ्य पर बल देते हुए कहा है कि "सारे हिन्दुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिन्दू–मुसलमानों के संबंध ठीक रहें, इसलिए बहुत से हिन्दुस्तानियों का इन दोनों लिपियों को जान लेना जरूरी है। ऐसा होने से हम आपस के व्यवहार से अंग्रेजी को निकाल सकेंगे।"

राष्ट्रीय एकीकरण के लिए राष्ट्रभाषा का अत्याधिक महत्व है। इस सत्य के संदर्भ में डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का कथन उद्धरणीय है– "राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका की बात को आल के समाजच्याास्त्री और भाषा वैज्ञानिक समान रूप से स्वीकार करने लगे है। भाषा की दुहरी संभावना–एकीकरण तथा विघटन को हम सजग भाव से समझें और एक ऐसी भाषा–नीति को अपनाएँ जो देच्या के आर्थिक और सामाजिक विकास में सहायक हो, हमारी बहु भाषिक यथार्थता के अनुकूल हो और जो 'राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएँ और समाधान' ग्रंथ में राष्ट्र भाषा के महत्व पर बल देते हुए कहा है कि "राजनैतिक एकता अपने आप में महत्क्यून्य और बेमानी है, यदि राष्ट्र के सदस्यों का हृदय एक नही हो पाता, और हृदय की एकता तब तक असंभव है, जब तक प्राणी की एकता न हो। यदि एक व्यक्ति दूसरे की बात समझ ही नहीं पाता तो एकता का अनुभव कैसे हो सकता है। अतः राष्ट्र भाषा उतनी ही आक्ययक है, जितना राष्ट्रध्वज या राष्ट्रगान।"

अतः देच्या की भाषा ही देच्या का स्वाभिमान, आत्मक्यिवास व एकता और अखण्डता को प्रकट करती है एवं बनाए रखती है। और जहाँ तक हिंदी भाषा प्रच्यान है, तो यह भाषा तो युगो–युगों से सांस्कृतिक और भावात्मक एकता की पवित्र धारा को प्रवाहित करती हुई देच्या की अखण्डता और एकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती आई है। भारत देच्या की धन–संपदा पर फिदा होकर अनेक विदेच्याी आक्रमणकरी समय–समय पर इस देच्या की पवित्र होकर अनेक विदेच्याी आक्रमणकरी समय–समय पर इस देच्या की पवित्र पर लूट–खसोट, साम्राज्य स्थापना या फिर धर्म–प्रचार आदि अनेक उद्देच्यय लेकर यहाँ आते रहे है और वे साथ मे अपनी भाषा संस्कृति, सभ्यता आदि की पहचान न केवल यहाँ पर छोडकर गए हैं बल्कि हमारी हिंदी भाषा, हिन्दुस्तानी संस्कृति आदि की पहचान अपने साथ भी लेकर गए हैं और इस प्रकार हमारी उदारमना हिंदी ने उन विदेच्याी भाषा के च्याब्दो को भी अपने में सहेजकर अपने च्याब्द भण्डार को ही नहीं बढाया बल्कि अपनी सरलता और उदारता का भी परिचय दिया है। अतः कहना ठीक ही है कि अनेक सभ्यताओं, संस्कृतियो और भाषाओं के संगम के कारण भारत और भारतीयता की विच्याष्ट पहचान के पीछे हिंदी का महत्वपूर्ण योगदान हैं। हिन्दी में सभी गुण विद्यमान है जो किसी भी भाषा में उस देच्या की धडकन

अथवा हृदय बनने के लिए जरुरी है। किन्तु यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है हिंदी भाषा को यह सम्मान एंव प्रतिष्ठा एक लंबी विकास यात्रा के बाद ही मिली है हिंदी को राष्ट्रव्यापी भाषा बनाने में हमारे देश के तीर्थ–यात्रियों, भ्रमणकारियों, आक्रमणकारियों , विदेशी शासकों, अंग्रेजों, विभिन्न स्वतंत्रता आन्दोलनों, संत–फकीरों आदि का विशेष योगदान रहा है क्योकि ये सभी पारस्परिक आदान–प्रदान संपर्क, संवाद और भाषाई अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा का सहारा लेते थे वह किसी न किसी रूप में आज की हिंदी ही थी।

स्वतंत्रता आंदोलन जो कि राष्ट्रव्यापी रूप में चला, उसका माध्यम भी अधिकांशतः हिंदी भाषा ही रहीं। अतः धीरे–धीरे उसके रूप में परिवर्तन आया और संस्कृत के पश्चात् देश को जोडने वाली भाषा के रूप में हिंदी विकसित होने लगी, किंतु लगभग 200 वर्षों तक भारतीय शासन तन्त्र पर अंग्रेजी का आधिपत्य होने के कारण उनकी भाषा अंग्रेजी भी अपनी जडे मजबूत कर चुकी थी। शासनतंत्र के सभी कार्यों का माध्यम अंग्रेजी भाषा बन चुकी थी।

15 अगस्त सन् 1947 को भारत देश आजाद हुआ। अंग्रेज चले गए थे, लेकिन अंग्रेजी को अभी जाना बाकी था और इसके लिए जरूरत थी हिंदी के व्यापक प्रचार–प्रचार और प्रयोग की । सरकार और जनता के बीच, प्रशासनिक कार्यों में, राज्यों में परस्पर सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी को बढावा देना अत्यंत जरूरी था। न्यायालयों में, शिक्षण संस्थानों में अंग्रेजी के प्रयोग की जगह हिंदी को प्रतिष्ठित करना था। इसके लिए संविधान की धारा 343 के अन्तर्गत हिंदी भाषा का दर्जा दिया गया और यह घोषणा की गई कि कुछ समय के पश्चात् राज–काज के सभी कार्य हिंदी में किए जाने लगेंगे। मगर अफसोस कि आल तक वह 'कुछ समय' पूरा नहीं हो पाया है और एक तरफ हम हिंदी को भारत ही धडकन, भारत का हृदय बनाने की बात कर रहे है तो दूसरी ओर हमारे द्वारा अंग्रेजी को अधिक बढावा दिया जा रहा है। हिंदी आज अपने ही घर में बेगानी सी नजर आती है तो अंग्रेजी उसके घर में पटरानी सी बन बैठी है। प्रवासी कवि हरिशंकर आदेश ने हिंदी भाषा की इस दुर्दशा को कुछ इस तरह व्यक्त करने का प्रयास किया है –

"कॉन्वैण्ट शिक्षा करे, हिंदी का उपहास।
इंग्लिश प्रोत्साहित करे हिंदी का उपहास।"

आज हम हिंदी बोलने मे शर्म व झिझक महसूस करते है और सोचने है कि यदि हम अंग्रेजी मे बातचीत नहीं करेंगे तो सामने वाले पर अच्छा प्रभाव नहीं जमा पाएँगे, किंतु हम भूल जाते है कि अपनी भाषा का प्रयोग ही संप्रभुता की पहचान है, जबकि विदेशी भाषा का प्रयोग दासता प्रकट करता है।

एक बार श्रीमती सुचेता कृपलानी ने संसद में स्पष्ट ग्राब्दों में कहा कि स्वभाषा प्रयोग न करने के क्या परिणाम होते हैं –

"अभी कल ही मुझे विलय लक्ष्मी जी उस स्थिति के बारे में बतला रही थी जो उनके दर पेग्रा आई। जब वे रूस गई अपना परिचय–पत्र प्रस्तुत कर रहीं थीं तो उन्हे बहुत अपमानित होना पडा। उन्हें ताना दिया गया कि हम कितने असभ्य है ं और उनसे पूछा गया कि क्या भारत की अपनी कोई भाषा नहीं है। मुझे याद हे कि जब मैं जर्मनी में यात्रा कर रहीं थी तो मेरे सामने भी उसी प्रकार की घटना पेग्रा आई। एक स्थान पर एक आदमी ने मुझसे पूछा, 'बहन, क्या आपकी अपनी कोई भाषा नहीं है? आप श्रीमती सुचेता कृपलानी के कथन से हि हम अनुमान लगा सकते है कि हम अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रयोग करने की अपेक्षा अंग्रेजी का प्रयोग करके अपनी गुलामी का ही परिचय दे रहे है। आज अंग्रेज भले ही हमारे देग्रा से चले गए हैं लेकिन भाषाई गुलामी अभी भी ग्रोष है और हिंदी प्रेमी इस गुलामी से विहल है और एक सह्रइस कवि ने अपनी इस विहलता को कुछ इस प्रकार व्यकत किया है–

"दुःख होता है देखकर लज्जा की है बात।
हिंदी हिन्दुस्तान में झेले झझांवत्।"

यह केवल एक कवि हरियांकर आदेग्रा की बात नहीं है, बल्कि प्रत्येक हिंदी प्रेमी अपनी राष्ट्र भाषा का इस तरह अपने ही देग्रा में अपमान होते देखकर त्रस्त हैं। आज हम कही भी किसी संस्थान या संगोष्ठी आदि में जाते है तो हम अपना परिचय इंग्लिग्रा मे देने में अपनी ग्राान समझते हैं हम भूल जाते है कि ऐसा करके न हम अपने देग्रा की अस्मिता को कुण्ठित कर रहे हैं, बल्कि अपी गुलाम मानसिकता का भी परिचय दे रहे है। उतर प्रदेग्रा के नेता व हिंदी प्रेमी प्रो. वासुदेव का यह कथन सच ही है कि "राष्ट्रभाषा के बिना लोकतन्त्र अपंग और अधूरा है।"

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राष्ट्र भाषा हमारे देग्रा की अस्मिता है, आन–बान और ग्राान है। न किसी जाति क्योष से जुडी है, न किसी प्रदेग्रा से बल्कि हमारे संपूर्ण हिन्दी देग्रा की भाषा और यही बात आज हमें जन–जन को समझानी होगी कि जब तक हिंदी भारत देग्रा का ह्रदय नहीं बन जाती तब तक हम स्वतंत्र होकर भी मानसिक रूप से अंग्रेजों के गुलाम है, क्योकि हिंदी के बिना हिन्दुस्तान की

पहचान नहीं है और इस तथ्य को प्रसिद्व कवि उदयभानु हंस ने भी अपने काव्य में इस प्रकार व्यक्त किया है –

"जिसमें न खिलें फूल वो उद्यान नहीं,
तन व्यर्थ है वह जिसमें रहे प्राण नहीं,
कितना ही कोई तर्क करो, याद रखो,
हिंदी के बिना हिन्द की पहचान नहीं।"

आज दक्षिण भारत में दस लाख से अधिक आदमी हिंदी बोल या लिख सकते है। अमेरिका, मॉरिसस, ट्रिनीडाड, कनाडा आदि देशों मे हिंदी भाषियों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढती जा रही है। विश्व में सबसे अधिक लोगो द्वारा बोली जानी जाने वाली भाषाओं मे हिंदी का तीसरा स्थान है। भारत में हिंदी के वर्चस्व को बढाने के लिए समय–समय पर हिंदी साहित्य सम्मेलनो का आयोजन होता रहा है मगर अफसोस की बात है कि आज हम सम्मलेनों मे भले ही सह राग कि हिंदी को भारत का हृदय बनाया जाए, किंतु यह केवल कोरा राग अलापने से संभव नहीं होगा। यह संभव तभी होगा जब हम अंग्रेजी के मोह को त्योगें और हिंदी को राज भाषा का भी दर्जा दिलाएँ। प्रशासनिक कार्यालयों में, न्यायालयों में कामकाज के रूप में केवल हिंदी का ही प्रयोग किया जाए तभी हिंदी को राष्ट्र का हृदय बनाने में कामयाब हो सकते हैं।

संदर्भः

1. हिन्द स्वराज्य :गाधी जी, अनुवादक अमृतलाल ठाकोर दास नाणावअी, पृ. 76
2. हिंदी साहित्य चिंतन, संपादक सुधाकर पाण्डेय, पृ. 19
3. आचार्य देवेन्दनाथ शर्मा, राष्ट्र भाषा हिंदी, समस्याएँ और समाधान, पृ. 15
4. प्रो. हरिशंकर आदेश, शुरभि सप्तशती, दोहा 309, पृ. 51
5. लोकभाषा ग्रन्थ–दस, तीसरा अधिवेशन, पृ. 55–56
6. प्रो. हरिशंकर आदेश, जमुना सप्तशती, दोहा सं0 490, पृ. 84
7. सं0 डॉ. रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस रचनावली, पृ. 79

डॉ0 मंजीत

प्राध्यापिका, हिंदी विभाग

वैश्य आर्य कन्या महाविद्यालय,

बहादुरगढ़, हरियाणा